

रंगमंच में संगीत

डॉ. गुंजन कुमार झा

रंगमंच से शास्त्रीय अथवा क्रियात्मक रूप से जुड़े हुए तमाम विद्वान यह मानते हैं कि संगीत रंगमंच पर एक महत्वपूर्ण उपादान है। मगर क्या यह केवल एक उपादान भर है या इसकी कोई और महत्ता भी है यह देखने और समझने की जरूरत कम से कम हिन्दी रंगमंच को बहुत है।

संगीत की एक बहुत प्रचलित परिभाषा है – गायन, वादन और नृत्य इन तीनों कलाओं के समावेश को संगीत कहते हैं। 'संगीत रन्ताकर' में लिखा है – गीतं, वाद्यं तथा नृत्तं त्रायं संगीत मुच्यते। हिन्दी रंगमंच के पुरोध भारतेन्दु ने जब संगीत चिंतन किया तो उन्होंने इसमें एक और चीज जोर दी – बताना। वे कहते हैं – 'गाना, बजाना, बताना और नाचना इसके समुच्च को संगीत कहते हैं'। बताने का संबंध यदि हम अभिनय से माने तो कह सकते हैं कि उन्होंने संगीत से रंगमंच की अनन्यता को स्थापित किया।

यह कतई विलक्षण बात नहीं कि नाट्य की उत्पत्ति चाहे किसी भी भाषा अथवा संस्कृति की हो, उसके विकास में कहीं ना कहीं किसी न किसी रूप में संगीत और नृत्य का ना सिर्फ योगदान रहा है बल्कि केन्द्रीय भूमिका रही है।

भारत के ऐतिहासिक विवरणों से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारतीय संगीत-प्रेमी रहे हैं। आर्य महिलाएं अपना बहुत समय संगीत तथा नृत्य में लगाती थीं। यज्ञ-विधन में भी संगीत तथा नृत्य का बहुत महत्व था और खेल तथा विनोद के अवसरों पर तो ये अनिवार्य ही थे। बचपन से ही बालक-बालिकाओं को संगीत तथा नृत्य की शिक्षा दी जाती थी। ऋग्वेद में एक स्थान पर लिखा है – 'पुत्री का विवाह पहले साम से हुआ, पितृ गन्धर्व से और तब अग्नि से। अन्त में वह मनुष्य को विवाह में दी गई।' इस वेदवाक्य से अर्थ निकाला जाना चाहिए कि बालिकाओं को पहले सोमरस बनाना सिखाया जाता था, पितृ उन्हें नृत्य-संगीत की शिक्षा दी जाती थी, पितृ उन्हें सोमरस बनाना सिखाया जाता था उसके बाद यज्ञ और तदोपरांत ही उनका विवाह होता था। ऋग्वेद की ही पंक्ति से यह भी दृष्टिगोचर होता है कि सोमरस बनाते हुए भी गाने की प्रथा थी। कृष्ण यजुर्वेद के अनुसार लड़कियाँ ऐसे पति के लिए प्रार्थना करती थीं जो संगीत का ज्ञाता हो। कौषीतकी ब्राह्मण में यह स्पष्टतः कहा गया है कि नृत्य, गीत और वाद्य-यंत्रों को बजाना वैदिक कृत्यों का प्रमुख अंग था। अश्वमेघ यज्ञ में वीणा वादन, पुरफषमेघ यज्ञ में

वीणा के साथ गीत एवं नृत्य तथा महाव्रत में नृत्य का विधन बताया गया है। यद्यपि वैदिक काल में वास्तविक नाटक नहीं पाया जा सकता, फिर भी उस समय बहुत से संगीत, नृत्य नाटकीय भावभंगिमा तथा वार्तालाप प्राप्य हैं। संभव है, इन वस्तुओं ने धीरे-धीरे परिवर्तित होकर नवीन रूप धारण कर लिया हो।

यूनान में नाटकों की व्युत्पत्ति के बारे में अरस्तू ने कहा है कि त्रासद और प्रहसन आरंभ में अभिव्यक्ति मात्रा थे। त्रासद का आरंभ स्तोत्रा रचनाओं के साथ हुआ और प्रहसनों का पूफहड़ गीतों के। ये स्तोत्रा दिअनुसस या बारबस नेताओं की उपासना में गाये जाते थे। अन्तिका में दिअनुसस उत्सवों पर सुरों के देवता बारबस के उपासक अपने-अपने शरीर में बकरे की खाल लपेटकर उग्र स्तोत्रा गाते थे। इन गीतों को त्रोगोद ;अजा गीतद्ध कहा गया है। इन गीतों में ही अभिनय तत्वों का समावेश कर नाटकों की रचना हुई जिन्हें त्रोगोदी या ट्रेजडी कहा गया है। कुछ समय बाद यूनानी अभिनेता कृत्रिम लिंग लगाकर अभिनय करने लगे। शिष्टाचार के विपरीत होने पर भी उत्सवों पर उन्हें अश्लील नहीं समझा जाता था। कालांतर में यह प्रथा पशु-पक्षियों से जुड़कर प्रहसनों के रूप में जीवित रही। वस्तुतः कृत्रिम लिंग कृषि उर्वरता का प्रतीक था तथा वे कृषि उत्पादन की अभिलाषा को लेकर मानव प्रजनन के प्रतीक

जननेन्द्रीय को कृत्रिम खेत के चतुर्दिक घुमाया करते थे और पूफहड़ गीत भी गाया करते थे।

यानी स्पष्ट है कि त्रासदी हो चाहे कामादी, दोनों की उत्पत्ति में गेय गीतों का योगदान केन्द्रीय है। वह संगीत ही है जिसमें अभिनय की समाविष्टी हुई और नाटक ने अपना रूप इख्तियार किया। यही स्थिति कमोबेश अन्य देशों व संस्कृतियों के नाट्य की उत्पत्ति पर भी लागू होती है। रोम के नाटकों की उत्पत्ति के पीछे महामारी से बचाव का रूप विद्यमान है। 364 इ.पू. में रोम में जब महामारी का प्रकोप हुआ, तब वहाँ के लोगों ने ईयूरिया के लूडियो को आमंत्रित कर उससे अभिनय और नृत्य कराके महामारी दूर करने की प्रार्थना की।

चीन और जापान के नाटकों के पीछे भी इसी तरह गीत और संगीत की आदिम भूमिका परिलक्षित होती है। केंजिके लेख में कंगूरा नामक दैवीय संगीत का वर्णन है। यह कंगूरा देवताओं के समक्ष गाया जाने वाला गीत है। आज भी शिंतो मूर्तियों के सामने नृत्य के साथ-साथ ऐसे गीत गाये जाते हैं। इन्हीं गीतों में नाट्यबीज नीहित हैं। काव्य संगीत के अभाव में ये गीत केवल निम्न श्रेणी के लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करते थे। कहा जाता है कि छठी शताब्दी में 'हदाका बस्' नामक एक चीनी को यह आदेश हुआ कि देश हित और मानव विनोद के लिए कुछ उत्सव तैयार करे। उसने 33

नाटक लिखे। यहीं से जापानी नाटकों का श्रीगणेश हुआ। यह भी कहा जाता है कि 805 ई. में ज्वालामुखी पफटने से जब पृथ्वी धंसने लगी तब उसकी रक्षा के लिए 'संबासो' नृत्य का प्रचलन हुआ। यही नृत्य नाटक का मूल है।

इसके अतिरिक्त चाहे आप जावा, सुमात्रा, मलाया की बात करें या पफारस, तुर्किस्तान या अरब देशों की सभी जगह नाट्यों के उद्भव में गीतों और संगीत का योगदान स्पष्ट होता है। जावा में पंत ;उपमायुक्त आख्यायिकाद्ध और चरित ;संवादात्मक गीतद्ध में से चरितों द्वारा नाटक की उत्पत्ति हुई। इन नाटकों में देवताओं और राजाओं के उदात्त रूप मिलते हैं। पफारस, तुर्किस्तान और अरब देशों में धर्म आधारित प्रहसन या भडौती खेल नाटक रूप में प्रस्तुत किये जाते थे। पफारस में धर्मिक नेता अलि और उनके परिवार के व्यक्तियों की वीरतापूर्वक मृत्यूगीतों को संवादात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता था।

उक्त तमाम बातों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि नाटक और रंगमंच की उत्पत्ति ही संगीत में संगीत एक बीज कारक के रूप में उपस्थित रहा है। ऐतिहासिक और पौराणिक रूपों में उल्लेखित नाट्यमंडपों के जो उल्लेख मिलते हैं उनके आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रंगमंच में संगीत की महत्ता किस अनुपात में थी। मेघदूत में शिलावेश्य का उल्लेख करते हुए लिखा गया है 'हे मेघ वहां पहुंचकर तुम

बीच नामक पहाड़ी पर विश्राम करने के लिए रुक जाना। वहां पफूले हुए कदंब वृक्षों के देखकर तुम्हें ऐसा लगेगा मानो वे तुमसे मिलने के लिए पुलकित हो उठे हों। वहां की शिलावेश्यों से तुम्हें सुगंधमयी वायु का सुख प्राप्त होगा, वे शिलावेश्य, जिन्हें वहीं के संभ्रांत लोग अपनी प्रेमिकाओं और रखेलों के साथ जवानी की उद्दाम रति क्रीड़ा करते समय उपयोग में लाते थे। ये शिलावेश्य ही एक प्रकार की नाट्यशालाएं थीं जहां नाट्य संगीत के अतिरिक्त संपन्न और संभ्रांत नागरिक वेश्याओं और प्रेमिकाओं के साथ रति सुख का आनन्द लेते थे। 'कुमार संभव' ;1.10द्ध में इन्हीं शिलावेश्यों को दरीगृह कहा गया है। ये शिलावेश्य या दरीगृह नाट्यशालाएं ही थीं। कुछ असंभव नहीं कि इन शिलावेश्यों में कला-निपुण सुंदरियों को वेतन देकर रखा जाता रहा हो और विशेष आयोजन – वसंतोत्सव या कौमुदी महोत्सव पर इन शिलावेश्यों में नृत्य-संगीत महोत्सव का आयोजन होता हो : 'मालविकाग्निमित्रा' में संगीतशाला और नाट्यशाला का उल्लेख हुआ है। एक स्थान पर प्रेक्षागृह का चित्राण करते हुए विदूषक कहता है – तो आप दोनों ;गणदास और हरिदत्तद्ध नाट्यशाला में जाकर संगीत का साज जुटाएं। इस प्रकार कालिदास ने जिन शिलावेश्यों का चित्राण किया है वे पहाड़ियों पर स्थित थे। इन

गुपफाओं और पहाड़ियों पर अनार्य कबीले रहते थे। किन्नर, गंधर्व, यक्ष इन्हीं कबीलों के वर्ग थे। किन्नर उर्ध्वाश अश्व का शेषांस मनुष्यों का था इसलिए उन्हें अश्वमुख या तुरंगवक भी कहा गया है। इस रूप का रूपायन पांचवीं सदी ई. पू. के एथेंस के अक्रोपालिस पर बने पार्थेनन की दीवारों पर हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि अश्व इनका गण चिन्ह था। प्राचीन परम्परा के अनुसार ये कैलाश पर्वत पर या हेमकूट के आसपास कुबेर के स्वर्ग में रहते थे। हिमालय के उसी प्रान्तर में वह प्रदेश है जिसे आज कन्नौर कहते हैं और वहां की बोली कन्नौरी है। यही कन्नौर प्राचीन किन्नर का अपभ्रंश भी है और आधुनिक कन्नौरवासियों की आचरण संबंधी स्वच्छंदता किन्नरों की सामाजिक वृत्ति का सहज स्मरण करा देती है।

ऐसी ही शिलावेश्म उड़ीसा के समीप उदयगिरि या खण्डगिरि की गुपफाओं में भी मिली है। सीताबेंगा और जोगीमारा में भी रंगशालाओं के अवशेष देखने के मिलते हैं। वहां की हाथी गुपफा या रानी गुपफा प्रकोष्ठ में बनी एक भित्ती चित्रा में नृत्य-संगीतरत स्त्री का सुंदर चित्रा बना हुआ है। इस चित्रा में संयुत हस्त मुद्रा की मार्दवता दर्शनीय है। खारवेल की हाथी गुपफा प्रशस्ति में राजतिलक के तीसरे वर्ष जनता द्वारा नृत्य-संगीत और वाद्य के साथ संपन्न होने वाले महोत्सव का उल्लेख है।

दक्षिण भारत में अमरावती, दूसरी सतीद्ध की सुप्रसिद्ध कलाकृतियों नृत्य-वादन रत्न अप्सराओं का अंकन दर्शनीय है। बोधिसत्व के समक्ष तूपित स्वर अप्सराएं नृत्य करती हुई दिखाई गयी है जो बोधिसत्व को संसार में अवतरित होने की प्रार्थना कर रही है। इसी प्रकार अजंता, बाघ, सित्तन वासल, एलोरा-एलीपफेंटा, बादामी आदि गुपफाओं में बने चित्रों और मूर्तियों में अभिनय कला की समृद्धि देखने को मिलती है। इनमें नृत्य करती स्त्रियां विभिन्न मुद्राएं धरण किए हैं। ये मुद्राएं शास्त्रीय हैं। अजन्ता चित्रावली में नृत्य-संगीतरत राक्षस, किन्नर, नाग, यक्ष, गंधर्व और अप्सराओं का सजीव रूप मिलता है।

सीताबेंगा की गुपफा की भी चर्चा की जा सकती है। अंदर से इस गुपफा की उफंचाई 6 फुट है। अंत में जाकर गोल दीवार के साथ-साथ मंच बना हुआ है। अंडे की आकार में बना यह नाट्यगृह पत्थर को काटकर बनाया गया है। दर्शकों को बैठने के लिए पत्थरों की कुर्सियां बनाई गयी हैं। मंच पर चढ़ने के लिए सीढियां भी हैं। प्रवेश-द्वार के पास दो बड़े छिद्र हैं। यह लकड़ी के खंभे लगाने के लिए है। यद्यपि वर्गस को इसके नाट्यगृह होने में पूर्ण संदेह है किंतु असितसेन हलधर ने बड़ी सूक्ष्मता से अध्ययन करके यह सिद्ध किया है कि यह प्राचीन भारत का नाट्यगृह ही था। वस्तुतः यह गुपफा कलाकारों के रहने का भी स्थान था और

प्रदर्शन का भी। आज भी देखने से वहां का वातावरण ऐसा लगता है कि यहां नृत्य और गान होने वाला ही है। कूद और महद की गुपफाओं में नृत्य करने और गाने की पूर्ण सुविधाएं थीं। किनारों पर दर्शक आराम से बैठ सकते थे। सीताबेंगा गुपफा में यक्षलिपि में लिखित एक शिलालेख है, जिसपर लिखा हुआ है—

‘स्वभावतः प्रिय कवि हृदय को दीप्त करते हैं। वसंत पूर्णिमा के दलोत्सव के समय हास्य और गीतों के मध्य लोग गले में कुंद के पफूलों की माला पहनते हैं।’ उस आधार पर कहा जा सकता है कि यहां कविता पाठ होता था, प्रेम गीत गाये जाते थे और नाट्याभिनय होते थे।

उड़ीसा में कोर्णाक का सूर्य मंदिर तथा गुजरात में सोमनाथ के मंदिरों में स्थाई नाट्यमंडपों की व्यवस्था थी। इन मंदिरों के मंडप स्तंभों पर, देवविग्रह के सम्मुख स्थाई नाट्यमंडप थे, जिन पर देवदासियां अपने-अपने अराध्य देवों की अभ्यार्थना करती थी और उन्हें प्रसन्न करने के लिए नृत्य, गीत और अभिनय करती थी। सोमनाथ के मंदिर के नाट्यमंडप तथा नृत्य-अभिनय की चर्चा कन्हैयालाल मणिकलाल मुंशी ने अपने उपन्यास ‘जय सोमनाथ’ में बड़े सरस और चित्ताकर्षक ढंग से की है। भरत ने नाटकों में गीतों की योजना को बहुत महत्त्व दिया है। वे कहते हैं जैसे कोई

भवन उचित प्रकार से निर्मित होने पर भी रंगने या चित्राकारी के बिना शोभा नहीं देता उसी प्रकार नाट्य-प्रयोग भी बिना गीतों के प्रेक्षकों का मनोरंजन नहीं कर सकता। भरत नाट्य में गीत संगीत को महत्ता बार-बार प्रतिपादित करते हैं। किंतु वे यह भी ये मानते हैं कि सामान्यतः स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण स्त्रियों के लिये गीत और पुरफषों के लिए पाठ्य उपयुक्त होता है क्योंकि स्त्रियों की आवाज सहज मधुर और पतली होती है और मनुष्यों ;पुरफषोंद्ध की बलवान या मोटी होती है।

भरत संगीत को नाट्य की शय्या मानते हैं। गान की विशेषता बताते हुए कहते हैं जिसमें सभी स्वर समाविष्ट रहें, वर्णों को वाद्यों की संगति या सहकार से सुंदर बनाया गया हो, तीन स्थानों में सम्ब(हो, तीन यति और तीनों मार्गों से युक्त हो, आनन्द या रंजन प्रदान करता हो, जो सम और ललित गुणशाली हो, अलंकारों से युक्त हो, सुख-पूर्वक जिसका प्रयोग किया जा सकता हो और जो मीठापन लिये हो। इसलिये सर्वप्रथम गीतों पर अधिक ध्यान देना या प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि शय्याभूत गीत ही नाट्य का आधार या विश्राम स्थल होता है। गायन और वाद्यों का ठीक प्रकार से प्रयोग करने पर नाट्य-प्रदर्शन को किसी प्रकार की आशंका या संकट का सामना नहीं करना पड़ता है।

भरत नाटक को यदि एक यज्ञ मानते हैं तो गीत और संगीत को उसका मंत्रोच्चार। नाटक को एक कर्मकांड की तरह व्याख्यायित करने के पीछे उनकी मंशा लोकहितकारी रही है और यों कि प्रारंभ से नाटक लोक-कल्याण के अपने महती लक्ष्य को लेकर चला है। पूर्वरंग का समूचा विधन संगीत या उसके अवयवों से ओतप्रात है। संगीत की अलौकिकता के संदर्भ में कहते हैं कि भरत द्वारा प्रयुक्त पूर्वरंग विधन और उसमें संयोजित गीत-संगीत को देखकर देवता कह उठे- 'जब गीत एवं वाद्य की ध्वनि के द्वारा अनुगत शुभावह नान्दी शब्दों का उच्चारण जिस प्रदेश को व्याप्त करेगा तो उससे सभी पापों का नाश हो जायेगा तथा वहां मांगल्य या शुभ दशा ;स्वतःद्ध प्राप्त हो जायेगी।' संगीत को भरत ने एक सहस्रा बार पवित्रा नदी में स्नान करने या जपतप कर्म से भी श्रेष्ठ माना है।

संगीत भारतीय रंगमंच से नाभिनाल संबंध में रचा बसा रहा। संस्कृत नाटकों की परंपरा में कर्मकांडीय महत्त्व रखने के बाद जब उसका अवसान हुआ तब यही संगीत लोक नाट्य परंपराओं में सजीव रहा। इसी लोक तत्त्व को पकड़कर भारतेन्दु ने नवजागरण की ज्याति जलाई। प्रसाद की सांस्कृतिक चेतना जिस अभिजात्य शैली को लेकर चलती उसमें वह लोक की सजीवता के साथ शास्त्रीयता की

गरिमा को पकड़ती है। मगर यहाँ भी संगीत अपने बदले हुए कलेवर में अपनी भूमिका निभाता है। पारसी रंगमंच में तमाम तड़क-भड़क को संगीत के माध्यम से ही साकार किया जाता है। उसकी उपयोगिता पर आप प्रश्नचिन्ह लगा सकते हैं किंतु प्रभावात्मकता पर नहीं। पृथ्वी थियेटर से लेकर इप्ता की जनवादी चेतना का उत्स और उनवान संगीत से होकर गुजरता है। अतः रंगमंच में संगीत की महत्ता असंदिग्ध है। बहस यदि हो सकती है तो केवल इसकी मात्रा, प्रकृति और नियोजन को लेकर।

संदर्भ ग्रंथ

- डॉ. रामजी पाण्डे, भारतीय नाट्य-सि(ति : उद्भव और विकास ;संस्कृत एवं हिन्दी नाटकों के विशेष संदर्भ में
- डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय, रंगमंच की भूमिका और हिन्दी नाटक
- कालिदास , मेघदूतम्, अंग्रेजी हिन्दी अनुवाद – डॉ. रांगेय राघव व रामावतार त्यागी
- कालिदास, मालविकाग्निमित्रा , अनुवाद रमाशंकर पांडे
- बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, हिन्दी नाट्यशास्त्रा शारंगदेव, संगीत रत्नाकर
- डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग,संगीत विशारद
- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र: नाटक निबंध,
- डॉ. गुंजन कुमार झा**
- संक्षिप्त परिचय:** हिंदू कॉलेज,दिल्ली विश्वविद्यालयद्ध से बी.ए.;हिन्दीऑनर्स व एम.ए. हिन्दीऋ एम.पिफल हिन्दी, तथा दिल्ली विश्वविद्यालय से नाटक और संगीत विषय पर डॉक्टरेट ;पी-एच.डीद्ध- /पफैकल्टी ऑपफ म्यूजिक;दिल्ली विश्वविद्यालयद्ध से 'संगीत शिरोमणी' व हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय से हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में एम.ए./ बी.ए. एम.

ए. एवं एम.पिफल. तीनों में विश्वविद्यालय टॉपर ऋ 'स्वर्ण पदक', 'सरस्वती पुरस्कार', 'मैथिलीशरणगुप्त पुरस्कार', प्रो.सावित्री सिन्हा स्मृति स्वर्ण-पदक प्राप्तकर्ता। अ.भा.स्नातकोत्तर छात्रावृत्ति, जे.आर. एपफ., एस.आर.एपफ. प्रदत्त/ विभिन्न साहित्यिक एवं सांगीतिक कार्यक्रमों एवं प्रतियोगिताओं में सक्रिय भागीदारी एवं अनेक पुरस्कार व सम्मान अर्जित। कई संगीत एलबम्स, नृत्य-नाटिकाओं, नाटकों एवं डॉक्यूमेंट्री पिफिल्म्स आदि में गायन एवं गीत-संगीत रचना, तीन पुस्तकें एवं विभिन्न पत्रा-पत्रिकाओं में रचनाएं व लेख प्रकाशित। संप्रति: साहित्य व संगीत साधना एवं शिक्षण कार्य।